क्लासिकल मार्क्सवाद

माओ त्से-तुङ

का प्रसिद्ध लेख

व्यवहार के बारे में

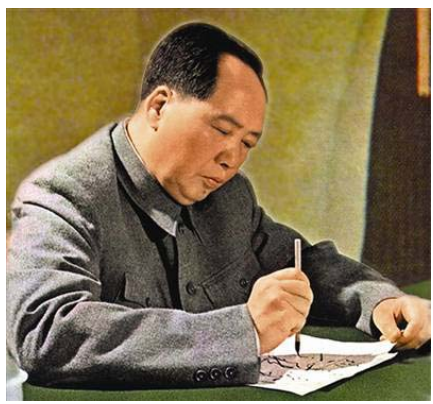

www.mazdoorbigul.net

हर दिन प्रगतिशील, मानवतावादी साहित्य पाने के लिए

- देश-दुनिया की हर महत्वपूर्ण घटना पर मजदूर वर्गीय दृष्टिकोण से लेख
- सुबह-सुबह प्रगतिशील कविता, कहानियां, उपन्यास, गीत-संगीत, हर रविवार पुस्तकों की पीडीएफ
- देश के महान क्रान्तिकारियों भगतसिंह, राहुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि का साहित्य पीडीएफ व यूनिकोड फॉर्मेट में

मजदूर बिगुल व्हाटसएप्प चैनल से जुड़ने के लिए अपना नाम और जिला लिखकर इस नम्बर पर भेज दें - 9892808704

वैकल्पिक नम्बर : 9619039793

फेसबुक पेज : fb.com/unitingworkingclass

टेलीग्राम चैनल : www.t.me/mazdoorbigul

व्यवहार के बारे में

ज्ञान और व्यवहार, जानने और कर्म करने के आपसी संबंध के बारे में

जुलाई 1937

मार्क्स से पहले का भौतिकवाद, मनुष्य की सामाजिक प्रकृति से अलग रहकर, उसके ऐतिहासिक विकास से अलग रहकर ज्ञान की समस्या को परखता था, और इसलिए सामाजिक व्यवहार पर, यानी उत्पादन और वर्ग-संघर्ष पर ज्ञान की निर्भरता को वह नहीं समझ पाता था।

पहली बात तो यह कि मार्क्सवादी लोग मनुष्य की उत्पादक कार्रवाई को सबसे बुनियादी व्यावहारिक कार्रवाई मानते हैं, एक ऐसी कार्रवाई जो उसकी अन्य सभी कार्रवाइयों को निश्चित करती है। मनुष्य का ज्ञान मुख्यतः उसकी भौतिक उत्पादन की कार्रवाई पर निर्भर रहता है, जिसके जरिए वह कदम-ब-कदम प्राकृतिक घटना-क्रम, प्रकृति के स्वरूप, प्रकृति के नियमों और अपने तथा प्रकृति के बीच के संबंधों की जानकारी प्राप्त करता है; और अपनी उत्पादक कार्रवाई के जरिए वह कदम-ब-कदम मनुष्य और मनुष्य के बीच के निश्चित संबंधों की जानकारी भी अलग- अलग मात्रा में प्राप्त करता जाता है। इस तरह का कोई भी ज्ञान उत्पादक कार्रवाई से अलग रहकर प्राप्त नहीं किया जा सकता। एक वर्गहीन समाज में हर व्यक्ति समाज के एक सदस्य के रूप में समाज के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर परिश्रम करता है, उनके साथ एक निश्चित प्रकार के उत्पादन-संबंध कायम करता है तथा मनुष्य की भौतिक आवश्यकताएं पूरी करने के लिए उत्पादक कार्रवाई में जुट जाता है। विभिन्न प्रकार के वर्ग-समाजों में, समाज के सभी वर्गों के सदस्य भी, भिन्न रूपों में, एक निश्चित प्रकार के उत्पादन-संबंध कायम करते हैं तथा अपनी भौतिक आवश्यकताएं पूरी करने के लिए उत्पादक कार्रवाई में जुट जाते हैं। यही वह मूल स्रोत है जहां से मनुष्य का ज्ञान विकसित होता है।

हमारी पार्टी में कुछ साथी कठमुल्लावादी थे, जिन्होंने एक लंबे समय तक चीनी क्रांति के अनुभव को अस्वीकार किया और इस सत्य को नहीं माना कि "मार्क्सवाद कोई कठमुल्ला-सूत्र नहीं बल्कि कर्म का मार्गदर्शक है"। वे लोग मार्क्सवादी रचनाओं के वाक्यों और वाक्यांशों को उनके प्रसंग से अलग करके उन्हें रट लेते थे और उनके जरिए लोगों पर रोब गालिब करते थे। कुछ साथी अनुभववादी थे, जो बहुत दिनों तक अपने आंशिक अनुभव से चिपके रहने के कारण न तो क्रांतिकारी व्यवहार के लिए क्रांतिकारी सिद्धांतों के महत्व को समझ पाए और न क्रांति की सम्पूर्ण स्थिति को ही देख पाए। ऐसे लोग अंधे होकर काम करते रहे, हालांकि उन्होंने बड़े परिश्रम से काम किया। इन दोनों ही किस्म

मनुष्य का सामाजिक व्यवहार महज उसकी उत्पादक कार्रवाई तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि बहुत से अन्य रूप भी धारण करता है—जैसे वर्ग-संघर्ष, राजनीतिक जीवन, वैज्ञानिक और कलात्मक गतिविधि; संक्षेप में यह कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में समाज के व्यावहारिक जीवन के सभी क्षेत्रों में भाग लेता है। इस तरह मनुष्य न सिर्फ अपने भौतिक जीवन द्वारा बल्कि अपने राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन द्वारा भी (राजनीतिक जीवन और सांस्कृतिक जीवन, दोनों ही भौतिक जीवन से घनिष्ठ रूप में संबंधित हैं) मनुष्य और मनुष्य के बीच के विभिन्न प्रकार के संबंधों की जानकारी अलग-अलग मात्रा में प्राप्त करता रहता है। सामाजिक व्यवहार के इन अन्य रूपों में, खास तौर से विभिन्न प्रकार का वर्ग-संघर्ष, मानव-ज्ञान के विकास पर गहरा प्रभाव डालता है। वर्ग-समाज में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी वर्ग के सदस्य के रूप में ही जीवन व्यतीत करता है, तथा प्रत्येक प्रकार की विचारधारा पर, बिना किसी अपवाद के, किसी न किसी वर्ग की छाप होती है।

मार्क्सवादियों का मत है कि मानव-समाज में उत्पादक कार्रवाई कदम-ब-कदम निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर बढ़ती जाती है, तथा फलतः मानव-ज्ञान भी, चाहे वह प्रकृति संबंधी हो चाहे समाज संबंधी, कदम-ब-कदम निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर बढ़ता जाता है, यानी उथलेपन से गहरेपन की ओर और एकांगीपन से बहुमुखीपन की ओर बढ़ता जाता है। इतिहास में बहुत समय तक समाज के इतिहास के बारे में मानव का ज्ञान एकांगी ही बना रहा, क्योंकि एक ओर तो शोषक वर्गों के पूर्वाग्रह समाज के इतिहास को सदा विकृत करते रहते थे, तथा दूसरी ओर छोटे पैमाने का उत्पादन मानव-दृष्टिकोण को सीमित कर देता था। उत्पादन की बड़ी शक्तियों (बड़े पैमाने के उद्योग-धंधों) के साथ जब आधुनिक सर्वहारा वर्ग का आविर्भाव हुआ, तभी मनुष्य सामाजिक इतिहास के विकास की सर्वांगीण, ऐतिहासिक समझ प्राप्त कर सका और समाज संबंधी अपने ज्ञान को विज्ञान का रूप, मार्क्सवाद के विज्ञान का रूप दे सका।

मार्क्सवादियों का मत है कि केवल मनुष्य का सामाजिक व्यवहार ही बाह्य जगत के बारे में मानव-ज्ञान की सच्चाई की कसौटी है। वास्तव में मानव-ज्ञान को सिर्फ तभी सिद्ध किया जाता है जब सामाजिक व्यवहार (भौतिक उत्पादन, वर्ग-संघर्ष या वैज्ञानिक प्रयोग) की प्रक्रिया के दौरान मनुष्य प्रत्याशित परिणाम प्राप्त कर लेता है। यदि मनुष्य अपने काम

के साथियों, खासतौर से कठमुल्लावादियों, के गलत विचारों की वजह से 1931-34 में चीनी क्रांति को भारी नुकसान उठाना पड़ा। खास तौर से कठमुल्लावादियों ने मार्क्सवाद का चोंगा पहनकर बहुत से साथियों को गुमराह किया। "व्यवहार के बारे में" नामक यह लेख कामरेड माओ त्से-तुङ ने पार्टी के अंदर कठमुल्लावाद और अनुभववाद, खास तौर से कठमुल्लावाद जैसी मनोगतवादी गलतियों का पर्दाफाश मार्क्सवादी ज्ञान-सिद्धांत के दृष्टिकोण के अनुसार करने के लिए लिखा था। इसका नाम "व्यवहार के बारे में" इसलिए रखा गया क्योंकि इसमें कठमुल्लावादी किस्म के मनोगतवाद का, जो व्यवहार को कम महत्व देता है, पर्दाफाश करने पर जोर दिया गया है। इस लेख के विचार कामरेड माओ त्से-तुङ ने येनान में जापान-विरोधी सैनिक व राजनीतिक कालेज में भाषण के रूप में प्रस्तुत किये थे।

में सफल होना चाहता है, अर्थात प्रत्याशित परिणाम प्राप्त करना चाहता है, तो उसे चाहिए कि वह अपने विचारों को वस्तुगत बाह्य जगत के नियमों के अनुरूप बनाए; अगर उसके विचार इन नियमों के अनुरूप नहीं बनेंगे, तो वह अपने व्यवहार में असफल हो जाएगा। जब वह असफल हो जाता है, तो अपनी असफलता से सबक सीखता है, अपने विचारों को सुधारकर उन्हें वाह्य जगत के नियमों के अनुरूप बना लेता है तथा इस प्रकार अपनी असफलता को सफलता में बदल सकता है; "असफलता सफलता की जननी है" और "ठोकर खाने से बुद्धि बढ़ती है" का यही अर्थ है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी ज्ञान-सिद्धांत व्यवहार को प्रथम स्थान देता है। उसका कहना है कि मानव-ज्ञान को व्यवहार से हरगिज अलग नहीं किया जा सकता। वह उन तमाम गलत सिद्धांतों को ठुकरा देता है जो व्यवहार के महत्व को अस्वीकार करते हैं या ज्ञान को व्यवहार से अलग करते हैं। जैसा कि लेनिन ने कहा है, "व्यवहार (सैद्धांतिक) ज्ञान से बढ़कर है, क्योंकि उसमें न सिर्फ सार्वभौमिकता का गुण होता है बल्कि प्रत्यक्ष वास्तविकता का गुण भी होता है।"[1] मार्क्सवादी दर्शन—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—की दो प्रमुख विशेषताएं हैं। पहली विशेषता है इसका वर्ग-स्वरूप : यह खुलेआम ऐलान करता है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सर्वहारा वर्ग की सेवा करता है। दूसरी विशेषता है इसकी व्यावहारिकता : यह इस बात पर जोर देता है कि सिद्धांत व्यवहार पर निर्भर है, इस बात पर जोर देता है कि सिद्धांत का आधार व्यवहार है और वह बदले में व्यवहार की ही सेवा करता है। किसी ज्ञान या सिद्धांत की सच्चाई का निर्णय हमारी मनोगत भावनाएं नहीं करतीं बल्कि सामाजिक व्यवहार के वस्तुगत परिणाम करते हैं। केवल सामाजिक व्यवहार ही सच्चाई की कसौटी हो सकता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी ज्ञान-सिद्धांत में व्यवहार का दृष्टिकोण प्रमुख और बुनियादी दृष्टिकोण है।[2]

लेकिन आखिर व्यवहार से मानव-ज्ञान निकलता कैसे है और वह बदले में व्यवहार की सेवा कैसे करता है? ज्ञान के विकास की प्रक्रिया पर दृष्टि डालते ही यह बात स्पष्ट हो जाती है।

व्यवहार की प्रक्रिया में, मनुष्य पहले विभिन्न वस्तुओं के रूप को ही देखता है, उनके अलग-अलग पहलुओं और उनके बाह्य संबंधों को ही देखता है। उदाहरण के लिए बाहर से कुछ लोग देखने के विचार से येनान आते हैं। पहले एक-दो दिनों में वे यहां की भौगोलिक स्थिति, सड़कों और घरों को देखते हैं; वे अनेक लोगों से मिलते हैं, दावतों, रात्रि समारोहों और सार्वजनिक सभाओं में शरीक होते हैं; वे तरह-तरह की बातचीत सुनते हैं और तरह-तरह के दस्तावेज पढ़ते हैं; ये सब वस्तुओं के रूप हैं, उनके अलग-अलग पहलू हैं और उनके बाह्य संबंध हैं। इसे ज्ञान की इंद्रियग्राह्य मंजिल कहते हैं, यानी यह इंद्रिय-संवेदनों और संस्कारों की मंजिल है। दूसरे शब्दों में येनान की ये विभिन्न वस्तुएं, देखने वाले दल के सदस्यों की इंद्रियों को प्रभावित करती हैं, उनके संवेदनों को जन्म देती हैं और उनके दिमाग में बहुत से संस्कार छोड़ देती हैं, तथा साथ ही इन संस्कारों के बीच बाह्य संबंधों की एक मोटी रूपरेखा भी छोड़ देती हैं : यह ज्ञानप्राप्ति की पहली मंजिल है। इस मंजिल में मनुष्य अभी गंभीर धारणाएं नहीं बना सकता, न तर्कसंगत निष्कर्ष ही निकाल सकता है।

जैसे-जैसे सामाजिक व्यवहार की प्रक्रिया चलती रहती है, वैसे-वैसे उन वस्तुओं की अनेक बार पुनरावृत्ति होती है जो व्यवहार की प्रक्रिया में मनुष्य के इंद्रिय-संवेदनों और संस्कारों को उत्पन्न करती हैं; इसके बाद मानव के मस्तिष्क के अंदर ज्ञानप्राप्ति की प्रक्रिया में एक आकस्मिक परिर्वतन (छलांग) होता है जिसके परिणाम स्वरूप धारणाएं बनती हैं। धारणाएं वस्तुओं के रूप, उनके अलग-अलग पहलू या उसके बाह्य संबंध नहीं रह जातीं; वे वस्तुओं के सारतत्व, उनकी समग्रता और उनके आंतरिक संबंधों को ग्रहण करती हैं। धारणाएं और इंद्रिय-संवेदन परिमाण की दृष्टि से ही नहीं बल्कि गुण की दृष्टि से भी भिन्न होते हैं। इससे आगे बढ़ने पर, निर्णय और तर्क की पद्धति को काम में लाते हुए, हम तर्कसंगत निष्कर्ष निकाल सकते हैं। "तीन राज्यों की कहानी" का यह वाक्य कि "अपने दिमाग पर जोर डालो, तो तुम्हें जरूर कोई न कोई तरकीब सूझ जाएगी", अथवा रोजमर्रा की बातचीत में यह कहना कि "जरा सोच तो लेने दो", ठीक ऐसा ही सिलसिला है जब मनुष्य निर्णय करने और तर्क करने के लिए अपने दिमाग की धारणाओं का इस्तेमाल करता है। यह ज्ञानप्राप्ति की दूसरी मंजिल है। जब हमारे यहां की हालत को देखने के लिए बाहर से आने वाले दल के सदस्य विभिन्न प्रकार की सामग्री इकट्ठी कर लेते हैं और इसके अलावा "उस पर सोच-विचार भी कर लेते हैं", तब वे यह निर्णय कर सकते है कि "जापान-विरोधी राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चा बनाने की कम्युनिस्ट पार्टी की नीति मुकम्मिल, ईमानदारीपूर्ण और सच्ची है।" यह निर्णय करने के बाद, यदि वे राष्ट्रीय पुनरुद्धार के लिए सच्चे दिल से एकता कायम करना चाहते हैं, तो वे एक कदम और आगे बढ़कर यह निष्कर्ष निकालेंगे कि "जापान-विरोधी राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चा सफल हो सकता है"। किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करने की पूरी प्रक्रिया में धारणा, निर्णय और तर्क की मंजिल अधिक महत्वपूर्ण मंजिल है; यह बुद्धिसंगत ज्ञान की मंजिल है। ज्ञान का वास्तविक कार्य है इंद्रिय-संवेदन द्वारा विचार तक पहुंचना, वस्तुगत चीजों के आंतरिक अंतरविरोधों, उनके नियमों तथा एक प्रक्रिया और दूसरी प्रक्रिया के आंतरिक संबंधों को कदम-ब-कदम समझ लेना, यानी तर्कसंगत ज्ञान तक पहुंच जाना। दूसरे शब्दों में यह कि तर्कसंगत ज्ञान इंद्रियग्राह्य ज्ञान से भिन्न इसलिए है कि इंद्रियग्राह्य ज्ञान वस्तुओं के अलग-अलग पहलुओं, रूपों और उनके बाह्य संबंधों के दायरे में ही रहता है, जबकि तर्कसंगतज्ञान एक भारी छलांग भरकर वस्तुओं की समग्रता, उनके सारतत्व और आंतरिक संबंधों तक पहुंच जाता है, तथा चारों ओर के जगत के आंतरिक अंतरविरोधों को प्रकट करता है। इसलिए तर्कसंगत ज्ञान में चारों ओर के जगत के विकास को समग्र रूप में, उसके सभी पहलुओं के आंतरिक संबंधों समेत, ग्रहण करने की सामर्थ्य होती है।

ज्ञान के विकास की प्रक्रिया का यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धांत, जो व्यवहार पर आधारित है और उथलेपन से गहरेपन की ओर चलता है, मार्क्सवाद के उदय से पहले किसी ने प्रस्तुत नहीं किया था। मार्क्सवादी भौतिकवाद ने पहली बार इस समस्या का सही समाधान प्रस्तुत किया। उसने भौतिकवादी और द्वन्द्वात्मक इन दोनों तरीकों से दिखला दिया कि ज्ञानप्राप्ति की क्रिया अधिकाधिक गंभीर होती जाती है, एक ऐसी क्रिया जिसके जरिए

सामाजिक मनुष्य उत्पादन-क्रिया और वर्ग-संघर्ष के पेचीदा और नियमित रूप से बार-बार होने वाले व्यवहार के दौरान इंद्रियग्राह्य ज्ञान से तर्कसंगत ज्ञान की ओर प्रगति करता है। लेनिन ने कहा था, "पदार्थ का अमूर्तीकरण, प्रकृति के नियम का अमूर्तीकरण, आर्थिक मूल्य का अमूर्तीकरण इत्यादि, संक्षेप में सभी वैज्ञानिक अमूर्तीकरण (जो सही और गंभीर हों, बेहूदा नहीं), अधिक गहराई, सच्चाई और पूर्णता से प्रकृति को प्रतिबिंबित करते रहते हैं।"[3] मार्क्सवाद-लेनिनवाद का मत है कि ज्ञानप्राप्ति की प्रक्रिया की दोनों मंजिलों की अपनी अलग-अलग विशेषताएं होती हैं : निचली मंजिल में ज्ञान इंद्रियग्राह्य रूप में प्रकट होता है, जबकि ऊंची मंजिल में वह अपने तर्कसंगत रूप में प्रकट होता है; लेकिन ये दोनों ही मंजिलें ज्ञानप्राप्ति की एक सम्पूर्ण प्रक्रिया की ही मंजिलें हैं। इंद्रियग्राह्य ज्ञान और बुद्धिसंगत ज्ञान के बीच गुणात्मक अंतर होता है, लेकिन वे एक दूसरे से अलग नहीं होते; व्यवहार के आधार पर उनके बीच एकता कायम होती है। हमारा व्यवहार यह साबित करता है कि जिन वस्तुओं का इंद्रिय-संवेदन हमें होता है, उनकी समझ तुरंत हासिल नहीं हो जाती, तथा जिन वस्तुओं की समझ हासिल हो जाती है, उनका इंद्रिय-संवेदन तभी अधिक गहरा हो सकता है। इंद्रिय-संवेदन केवल रूप की ही समस्या को हल करता है; सारतत्व की समस्या को केवल सिद्धांत ही हल कर सकता है। इन दोनों समस्याओं को व्यवहार से अलग कतई हल नहीं किया जा सकता। यदि कोई मनुष्य किसी चीज को जानना चाहता हो, तो उसके सामने सिवाय इसके और कोई रास्ता नहीं कि वह उस चीज के सम्पर्क में आए, यानी उसके वातावरण में रहे (अमल करे)। सामंती समाज में पूंजीवादी समाज के नियमों को पहले से ही जान लेना असंभव था, क्योंकि पूंजीवाद का अभी उदय ही नहीं हुआ था और उससे संबंधित व्यवहार का भी अभाव था। मार्क्सवाद केवल पूंजीवादी समाज की ही उपज हो सकता है। स्वच्छंदतावादी पूंजीवाद वाले युग में मार्क्स पहले से ही साम्राज्यवादी युग के विशेष नियमों को ठोस रूप से नहीं जान सकते थे, क्योंकि साम्राज्यवाद—पूंजीवाद की आखिरी मंजिल—का अभी प्रादुर्भाव नहीं हुआ था और उससे संबंधित व्यवहार का भी अभाव था। यह कार्य केवल लेनिन और स्तालिन ही कर सकते थे। मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और स्तालिन अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन क्यों कर सके, इसका कारण उनकी प्रतिभा के अलावा मुख्यतः यह है कि उन्होंने अपने समय के वर्ग-संघर्ष और वैज्ञानिक प्रयोगों के अमल में व्यक्तिगत रूप से भाग लिया था; इस शर्त के बिना किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति को भी सफलता न मिल पाती। यह कहावत कि "विद्वान लोग घर बैठे ही संसार की सारी बातें जान लेते हैं", तकनोलाजी की दृष्टि से अविकसित अतीत काल में महज कोरी गप थी। हालांकि तकनोलाजी की दृष्टि से विकसित वर्तमान युग में यह कहावत चरितार्थ हो सकती है, फिर भी दुनिया में हर जगह सच्चा व्यक्तिगत ज्ञान उन्हीं लोगों को प्राप्त होता है जो व्यवहार में लगे होते हैं। जब वे लोग अपने व्यवहार के जरिए "ज्ञान" प्राप्त कर लेते हैं और जब उनका ज्ञान लेखन और तकनीक के माध्यम से "विद्वान" तक पहुंचता है, सिर्फ तभी विद्वान अप्रत्यक्ष रूप से "संसार की सारी बातें जान लेता है"। अगर आप किसी चीज को या किसी तरह की चीजों को प्रत्यक्ष रूप से जानना चाहते हैं तो आप वास्तविकता को बदलने, उस चीज

को या उस तरह की चीजों को बदलने के व्यावहारिक संघर्ष में व्यक्तिगत रूप से भाग लेकर ही उस चीज के या उस तरह की चीजों के रूपों से सम्पर्क कायम कर सकते हैं; वास्तविकता को बदलने के व्यावहारिक संघर्ष में व्यक्तिगत रूप से भाग लेकर ही आप उस चीज के या उस तरह की चीजों के सारतत्व का पता लगा सकते हैं और उन्हें समझ सकते हैं। वास्तव में हर आदमी ज्ञान के इसी मार्ग पर चलता है, हालांकि कुछ लोग जानबूझकर इस तथ्य को तोड़ते-मरोड़ते हैं और इसके विपरीत तर्क पेश करते हैं। संसार में सबसे हास्यास्पद वह "ज्ञानी" है जो इधर-उधर से सुनकर कुछ अधकचरा ज्ञान प्राप्त कर लेता है और अपने को "विश्व का परमज्ञानी" घोषित कर देता है; इससे केवल यह प्रकट होता है कि उसने अभी ठीक से अपनी थाह नहीं ली। ज्ञान एक वैज्ञानिक वस्तु है और इस मामले में जरा भी बेईमानी या घमण्ड की इजाजत नहीं दी जा सकती। इससे बिलकुल उल्टा रुख—ईमानदारी और नम्रता—निश्चित रूप से आवश्यक है। यदि आप ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको वास्तविकता को बदलने के व्यवहार में भाग लेना होगा। यदि आप नाशपाती का स्वाद जानना चाहते हैं तो आपको उसे स्वयं खाकर उसके वास्तविक रूप को बदलना होगा। यदि आप परमाणु के रचना-विधान और गुण-धर्म को समझना चाहते हैं तो आपको परमाणु की अवस्था बदलने के लिए भौतिक और रासायनिक प्रयोग करने होंगे। यदि आप क्रांति के सिद्धांत और तरीके जानना चाहते हैं, तो आपको क्रांति में भाग लेना होगा। सभी प्रकार का सच्चा ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव से ही उत्पन्न होता है। लेकिन मनुष्य को हर बात का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो सकता; वास्तव में हमारा अधिकांश ज्ञान अप्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त होता है, जैसे प्राचीन काल से और विदेशों से प्राप्त होने वाला सारा ज्ञान। हमारे पूर्वजों और विदेशियों को ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त हुआ है। यदि उन लोगों के प्रत्यक्ष अनुभव के दौरान लेनिन द्वारा बताई गई "वैज्ञानिक अमूर्तीकरण" की शर्त पूरी हो गई हो और वस्तुगत यथार्थ को वैज्ञानिक ढंग से प्रतिबिंबित किया गया हो, तभी यह ज्ञान विश्वनीय होता है, अन्यथा नहीं। इसलिए मनुष्य के ज्ञान के केवल दो भाग होते हैं—प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त होने वाला ज्ञान और अप्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त होने वाला ज्ञान। साथ ही जो कुछ मेरे लिए अप्रत्यक्ष अनुभव है, वह दूसरों के लिए प्रत्यक्ष अनुभव है। अतएव ज्ञान को यदि हम उसकी समग्रता में लें, तो हर तरह का ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। किसी भी ज्ञान का स्रोत वस्तुगत बाह्य जगत का मनुष्य की इंद्रियों द्वारा होने वाला संवेदन है। यदि कोई इस तरह के इंद्रिय-संवेदन को अस्वीकार करता है, प्रत्यक्ष अनुभव को अस्वीकार करता है अथवा वास्तविकता को बदलने के व्यवहार में व्यक्तिगत रूप से भाग लेने की बात को अस्वीकार करता है, तो वह भौतिकवादी नहीं है। इसीलिए "ज्ञानी" लोग हास्यास्पद ठहरते हैं। चीन में एक पुरानी कहावत है, "बाघ की मांद में घुसे बिना बाघ के बच्चे कैसे मिल सकते हैं?" यह कहावत मनुष्य के व्यवहार के लिए सच्ची साबित होती है और यह ज्ञान-सिद्धांत के लिए भी सच्ची साबित होती है। व्यवहार से अलग ज्ञान का अस्तित्व नहीं हो सकता।

वास्तविकता को बदलने के व्यवहार के आधार पर उत्पन्न होने वाली ज्ञानप्राप्ति की

द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी क्रिया को—ज्ञानप्राप्ति की कदम-ब-कदम गंभीर होने वाली क्रिया को—स्पष्ट करने के लिए कुछ अन्य ठोस मिसालें नीचे दी जाती हैं।

पूंजीवादी समाज के बारे में सर्वहारा वर्ग का ज्ञान। अपने व्यवहार के पहले दौर में—मशीनें तोड़ने और स्वतःस्फूर्त संघर्षों के दौर में—सर्वहारा वर्ग अभी केवल इंद्रियग्राह्य ज्ञान की ही मंजिल में था; उसे अभी पूंजीवाद के विभिन्न रूपों के केवल कुछ ही पहलुओं और उनके बाह्य संबंधों का ही ज्ञान था। उस समय सर्वहारा वर्ग केवल "अपने स्वाभाविक रूप में स्थित वर्ग" था। लेकिन यह वर्ग जब अपने व्यवहार के दूसरे दौर में—जागरूक व संगठित रूप से चलने वाले आर्थिक संघर्ष और राजनीतिक संघर्ष के दौर में—पहुंचा, तो उसने अपने व्यवहार से, लंबे संघर्षों के अपने अनुभव से और मार्क्सवादी सिद्धांतों की, जिनका जन्म मार्क्स और एंगेल्स द्वारा वैज्ञानिक पद्धति से इन अनुभवों का सार ग्रहण करके हुआ था, शिक्षा से पूंजीवादी समाज के सारतत्व को समझा, विभिन्न सामाजिक वर्गों के शोषण-संबंधों और अपने ऐतिहासिक कर्तव्य को समझा, तथा इस प्रकार वह "अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील वर्ग" बना।

यही बात साम्राज्यवाद के बारे में चीनी जनता के ज्ञान पर भी लागू होती है। पहली मंजिल सतही इंद्रियग्राह्य ज्ञान की थीं, जैसा कि थाइफिङ स्वर्गिक-राज्य आंदोलन, ई हो थ्वान आंदोलन आदि के अंधाधुंध विदेश-विरोधी संघर्षों से प्रकट होता है। केवल दूसरी मंजिल में ही चीनी जनता बुद्धिसंगत ज्ञान की मंजिल में पहुंची, साम्राज्यवाद के आंतरिक और बाह्य अंतरविरोधों को देख सकी तथा इस असलियत को देख सकी कि चीन के दलाल-पूंजीपति वर्ग और सामंती वर्ग के सहयोग से साम्राज्यवाद ने चीन के व्यापक जन-समुदाय का शोषण व उत्पीड़न किया। इस तरह के ज्ञान का आरंभ 1919 के 4 मई आंदोलन के आसपास ही हुआ।

इसके बाद हम जरा युद्ध पर विचार करें। यदि युद्ध का संचालन करने वालों के पास युद्ध के अनुभव का अभाव है, तो वे आरंभिक मंजिल में एक विशेष युद्ध का (उदाहरण के लिए पिछले दस वर्षों का हमारा भूमि-क्रांति युद्ध) संचालन करने वाले गंभीर नियमों को नहीं समझ पाएंगे। आरंभिक मंजिल में उन्हें केवल लड़ाई के बहुत से अनुभव प्राप्त होते हैं और वे अनेक बार हारते हैं। लेकिन इस तरह के अनुभव से (जीती हुई लड़ाइयों और खासकर हारी हुई लड़ाइयों के अनुभव से) वे समूचे युद्ध के आंतरिक सूत्र को समझ जाते हैं, अर्थात उस विशेष युद्ध के नियमों को समझ जाते हैं, रणनीति और कार्यनीति को समझ जाते हैं और फलतः बड़े विश्वास के साथ युद्ध का संचालन करने लगते हैं। ऐसे समय में यदि किसी अनुभवहीन व्यक्ति को नायक बना दिया गया, तो वह भी तब तक युद्ध के सच्चे नियमों को नहीं समझ सकता जब तक कि कई बार हार न जाए (अनुभव न प्राप्त कर ले)।

किसी साथी को यदि कोई काम दिया जाता है और उसे स्वीकार करने का उसमें साहस नहीं होता, तो वह अक्सर यह कहता है, "मुझे भरोसा नहीं कि मैं यह काम कर सकूंगा"। उसे आखिर अपने पर भरोसा क्यों नहीं है? इसलिए कि उसे इस तरह के काम

की अंतर्वस्तु और परिस्थितियों की व्यवस्थित समझ नहीं है, अथवा इसलिए कि इस तरह के काम से उसका सम्पर्क बहुत थोड़ा रहा है, या रहा ही नहीं है, तथा इसलिए उसके नियम उसकी पहुंच के बाहर हैं। काम के स्वरूप और परिस्थितियों का विस्तृत विश्लेषण करने के बाद उसे अपने पर अधिक भरोसा हो जाएगा, और वह उसे करने के लिए राजी हो जाएगा। कुछ समय तक काम करने के बाद उस व्यक्ति को यदि उस काम का अनुभव हो जाए, इसके अलावा यदि वह चीजों को खुले दिमाग से देखने को तैयार हो और समस्याओं पर मनोगत, एकांगी और सतही तरीके से विचार न करता हो, तो वह इस बारे में खुद ही परिणाम निकाल सकेगा कि काम कैसे करना चाहिए, तथा उसका साहस भी बहुत ज्यादा बढ़ जाएगा। केवल ऐसे ही लोग, जो समस्याओं के प्रति मनोगत, एकांगी और सतही रुख अपनाते हैं, कहीं जाने के बाद वहां की परिस्थिति पर विचार किए बिना, वस्तुओं को समग्र रूप से (उनके समूचे इतिहास और उनकी समूची वर्तमान स्थिति की दृष्टि से) परखे बिना, तथा वस्तुओं के सारतत्व (उनके स्वरूप तथा एक वस्तु और दूसरी वस्तु के बीच के आंतरिक संबंधों) तक पहुंचे बिना ही बड़े आत्मसंतोष के साथ आज्ञाएं और निर्देश जारी करते हैं। ऐसे लोगों का ठोकर खाना और गिरना अनिवार्य है।

इस प्रकार ज्ञानप्राप्ति की प्रक्रिया में पहला कदम है बाह्य जगत की वस्तुओं से सम्पर्क; यह कदम इंद्रिय-संवेदन की मंजिल का कदम है। दूसरा कदम है इंद्रिय-संवेदन द्वारा प्राप्त सामग्री को पुनर्व्यवस्थित करके और उसकी पुनर्रचना करके उसका समन्वय करना; यह कदम धारणा, निर्णय और तर्क की मंजिल का कदम है। जब इंद्रिय-संवेदन की सामग्री बहुत समृद्ध होती है (आंशिक या अपूर्ण नहीं होती) और वास्तविकता के अनुकूल होती है (भ्रामक नहीं होती), सिर्फ तभी हम ऐसी सामग्री के आधार पर सही धारणाएं बना सकते हैं और सही तर्क पेश कर सकते हैं।

यहां दो महत्वपूर्ण बातों पर जोर देना जरूरी है। पहली बात, जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है लेकिन जिसे यहां दोहराना आवश्यक है, यह है कि बुद्धिसंगत ज्ञान इंद्रियग्राह्य ज्ञान पर निर्भर है। जो कोई यह समझता है कि बुद्धिसंगत ज्ञान को इंद्रियग्राह्य ज्ञान से प्राप्त करना आवश्यक नहीं, वह एक आदर्शवादी है। दर्शन के इतिहास में एक तथाकथित "बुद्धिवादी" विचार-शाखा है जो केवल बुद्धि का औचित्य स्वीकार करती है और अनुभव का औचित्य नहीं मानती और जो केवल बुद्धि को विश्वसनीय और इंद्रियग्राह्य अनुभव को अविश्वसनीय मानती है; इस विचार-शाखा की गलती यह है कि वह चीजों को उल्टा करके देखती है। बुद्धिसंगत ज्ञान ठीक इसलिए विश्वसनीय होता है क्योंकि उसका स्रोत इंद्रिय-संवेदन में होता है। अन्यथा वह बिना स्रोत के पानी, या बिना जड़ के वृक्ष जैसी मनोगत रूप से स्वतः उत्पन्न होने वाली अविश्वसनीय वस्तु बन जाएगा। ज्ञानप्राप्ति की प्रक्रिया में जहां तक क्रम का संबंध है, इंद्रियग्राह्य अनुभव पहले आता है; ज्ञानप्राप्ति की प्रक्रिया में सामाजिक व्यवहार के महत्व पर हम ठीक इसलिए जोर देते हैं क्योंकि केवल सामाजिक व्यवहार ही मानव-ज्ञान को जन्म दे सकता है और वस्तुगत बाह्य जगत से इंद्रियग्राह्य अनुभव प्राप्त करने के पथ पर मानव को चला सकता है। यदि कोई अपनी

आंखें मूंद ले, कान बंद कर ले और वस्तुगत बाह्य जगत से बिलकुल अलग हो जाए, तो उसे कोई ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। ज्ञान अनुभव से शुरू होता है—ज्ञान-सिद्धांत का भौतिकवाद यही है।

दूसरी बात यह है कि ज्ञान की गहराई को बढ़ाने की जरूरत होती है, ज्ञान को इंद्रियग्राह्य मंजिल से और आगे बढ़ाकर उसकी बुद्धिसंगत मंजिल तक पहुंचाने की जरूरत होती है—यही ज्ञान-सिद्धांत का द्वन्द्ववाद है।[4] यह सोचना कि ज्ञान निचली मंजिल पर यानी इंद्रियग्राह्य मंजिल पर रुक सकता है तथा इंद्रियग्राह्य ज्ञान ही विश्वसनीय है बुद्धिसंगत ज्ञान नहीं, इतिहास में "अनुभववाद" की गलती को दोहराना होगा। इस सिद्धांत की गलती यह है कि वह इस बात को नहीं देख पाता कि इंद्रिय-संवेदन की सामग्री वस्तुगत बाह्य जगत की कुछ वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित तो करती है (मैं यहां आदर्शवादी अनुभववाद की बात नहीं कर रहा जो अनुभव को तथाकथित आत्मनिरीक्षण तक सीमित कर देता है), फिर भी वह एकांगी और सतही होती है, वस्तुओं के अपूर्ण रूप को प्रतिबिंबित करती है और उनके सारतत्व को प्रतिबिंबित नहीं करती। किसी वस्तु के समूचे रूप को प्रतिबिंबित करने के लिए, उसके सारतत्व और उसमें निहित नियमों को प्रतिबिंबित करने के लिए, यह आवश्यक है कि चिंतन के जरिए इंद्रिय-संवेदन की समृद्ध सामग्री को पुनर्निर्मित किया जाए, स्थूल को छोड़कर सूक्ष्म को ग्रहण किया जाए, मिथ्या को हटाकर सत्य को कायम रखा जाए, एक बात से दूसरी बात तक और बाह्य रूप को पार करके अंतर्वस्तु तक पहुंचा जाए, ताकि धारणाओं और सिद्धांतों की व्यवस्था कायम की जा सके—यह आवश्यक है कि इंद्रियग्राह्य ज्ञान से बुद्धिसंगत ज्ञान तक छलांग भरी जाए। जो ज्ञान इस तरह से पुनर्निर्मित होता है, वह ज्यादा खोखला या ज्यादा अविश्वसनीय नहीं होता; इसके विपरीत, ज्ञानप्राप्ति की प्रक्रिया में व्यवहार के आधार पर वैज्ञानिक पद्धति के जरिए जो कुछ भी पुनर्निर्मित होता है, वह, लेनिन के शब्दों में, वस्तुगत चीजों को अधिक गहराई, सच्चाई और पूर्णता से प्रतिबिंबित करता है। निकृष्ट "व्यावहारिक लोग" ये बातें नहीं समझ पाते, वे अनुभव की इज्जत करते हैं और सिद्धांत को नजरअंदाज करते हैं, तथा इसलिए समूची वस्तुगत प्रक्रिया को व्यापक रूप से नहीं देख पाते, उनमें स्पष्ट दिशा और दूरदृष्टि का अभाव होता है, तथा कभी-कभार की सफलता से और सच्चाई की झलकमात्र से आत्मतुष्ट हो जाते हैं। ऐसे लोगों पर यदि क्रांति का संचालन करने का भार हो, तो वे उसे अंधी गली में ले जाकर छोड़ देंगे।

बुद्धिसंगत ज्ञान इंद्रियग्राह्य ज्ञान पर निर्भर होता है और इंद्रियग्राह्य ज्ञान का बुद्धिसंगत ज्ञान के रूप में विकसित होना बाकी रहता है—यही द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी ज्ञान-सिद्धांत है। दर्शन-शास्त्र में न तो "बुद्धिवाद" ज्ञान की ऐतिहासिक या द्वन्द्वात्मक प्रकृति को समझता है और न "अनुभववाद"। इनमें से हरेक के अंदर यद्यपि सत्य का एक पहलू मौजूद रहता है (यहां मैं भौतिकवादी बुद्धिवाद और अनुभववाद की

बात कर रहा हूं, आदर्शवादी बुद्धिवाद और अनुभववाद की नहीं), फिर भी ज्ञान-सिद्धांत के पूरे सिलसिले में ये दोनों ही विचार-शाखाएं गलत हैं। इंद्रियग्राह्य ज्ञान से बुद्धिसंगत ज्ञान की ओर चलने की ज्ञानप्राप्ति की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी क्रिया ज्ञानप्राप्ति की एक छोटी प्रक्रिया (जैसे किसी एक वस्तु या काम को जानना) के साथ-साथ ज्ञानप्राप्ति की एक बड़ी प्रक्रिया (जैसे किसी पूरे समाज या किसी क्रांति को जानना) के बारे में भी सही साबित होती है।

लेकिन ज्ञानप्राप्ति की क्रिया यहीं समाप्त नहीं हो जाती। अगर ज्ञानप्राप्ति की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी क्रिया केवल बुद्धिसंगत ज्ञान पर ही रुक जाती है, तो समस्या का केवल आधा ही अंश निपटाया जा सकेगा। और जहां तक मार्क्सवादी दर्शन का संबंध है, उसके लिहाज से तो केवल वह आधा अंश ही निपटाया जाता है जो ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। मार्क्सवादी दर्शन के मतानुसार सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या यह नहीं है कि हम वस्तुगत जगत के नियमों को समझ लें और इस प्रकार विश्व की व्याख्या कर सकें, बल्कि यह है कि इन नियमों के ज्ञान को विश्व का रूपांतर करने के लिए गत्यात्मक रूप से लागू करें। मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार सिद्धांत महत्वपूर्ण होता है, और उसके महत्व को लेनिन ने इस वाक्य में पूरी तरह बता दिया है, "बिना क्रांतिकारी सिद्धांत के कोई क्रांतिकारी आंदोलन नहीं हो सकता।"[5] लेकिन मार्क्सवाद ठीक इसी कारण और केवल इसीलिए सिद्धांत पर जोर देता है क्योंकि वह कर्म का पथ-प्रदर्शन कर सकता है। भले ही हमारे पास सही सिद्धांत मौजूद हो, लेकिन अगर हम महज उसका जाप करते रहेंगे, उसे उठाकर ताक पर रख देंगे और उसे अमल में नहीं लाएंगे, तो उस सिद्धांत का, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। ज्ञान व्यवहार से शुरू होता है, और व्यवहार के जरिए प्राप्त होने वाले सैद्धांतिक ज्ञान को फिर व्यवहार के पास लौट जाना होता है। ज्ञान का गत्यात्मक धर्म न सिर्फ इंद्रियग्राह्य ज्ञान से बुद्धिसंगत ज्ञान तक गत्यात्मक छलांग भरने में प्रकट होता है बल्कि—और यह अधिक महत्वपूर्ण है —बुद्धिसंगत ज्ञान से क्रांतिकारी व्यवहार तक छलांग भरने में भी प्रकट होता है। जो ज्ञान संसार के नियमों को आत्मसात कर लेता है, उसे संसार को बदलने के व्यवहार की ओर फिर से निर्देशित करना चाहिए, उत्पादन के व्यवहार में, क्रांतिकारी वर्ग-संघर्ष और क्रांतिकारी राष्ट्रीय संघर्ष के व्यवहार में, तथा वैज्ञानिक प्रयोगों के व्यवहार में फिर एक बार लागू करना चाहिए। यह सिद्धांत को परखने और उसे विकसित करने की प्रक्रिया है, ज्ञानप्राप्ति की समूची प्रक्रिया का ही जारी रूप है। सिद्धांत वस्तुगत यथार्थ के अनुरूप है अथवा नहीं, यह समस्या इंद्रियग्राह्य ज्ञान से बुद्धिसंगत ज्ञान तक पहुंचने की ऊपर बताई गई क्रिया में न तो पूरी तरह हल होती है और न पूरी तरह हल हो सकती है। उसे पूरी तरह हल करने का एकमात्र तरीका यह है कि बुद्धिसंगत ज्ञान को सामाजिक व्यवहार की ओर फिर से निर्देशित किया जाए, सिद्धांत को व्यवहार में लागू किया जाए और यह देखा जाए कि उससे प्रत्याशित फल मिलता है या नहीं। प्राकृतिक विज्ञान के बहुत से सिद्धांत सत्य माने जाते हैं, केवल इसलिए नहीं कि प्रकृति-वैज्ञानिकों ने जब उन्हें निकाला था तब उन्हें सत्य समझा जाता

था, बल्कि इसलिए भी कि बाद के वैज्ञानिक व्यवहार में उनकी सच्चाई परखी जा चुकी है। इसी तरह मार्क्सवाद-लेनिनवाद को भी सत्य समझा जाता है, केवल इसलिए नहीं कि मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और स्तालिन ने जब वैज्ञानिक पद्धति से उसका प्रतिपादन किया था तब उसे सत्य समझा जाता था, बल्कि इसलिए भी कि बाद के क्रांतिकारी वर्ग-संघर्ष और क्रांतिकारी राष्ट्रीय संघर्ष के व्यवहार में उसकी सच्चाई परखी जा चुकी है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इसलिए एक सर्वव्यापी सत्य है, क्योंकि व्यवहार में उससे बचकर निकलना किसी के लिए भी संभव नहीं है। मानव-ज्ञान का इतिहास हमें बतलाता है कि बहुत से सिद्धांतों की सच्चाई अपूर्ण होती है और यह अपूर्णता व्यवहार की कसौटी से ही दूर की जाती है। बहुत से सिद्धांत गलत होते हैं और व्यवहार की कसौटी से ही उन्हें दुरुस्त किया जाता है। यही कारण है कि व्यवहार ही सत्य की कसौटी है और "जीवन के दृष्टिकोण को, व्यवहार के दृष्टिकोण को, ज्ञान-सिद्धांत में पहली और बुनियादी चीज होना चाहिए"[6]। स्तालिन ने ठीक ही कहा था, "सिद्धांत यदि क्रांतिकारी व्यवहार से संबद्ध न हो जाए, तो वह निरुद्देश्य हो जाता है—ठीक उसी तरह जैसे क्रांतिकारी सिद्धांत द्वारा पथ आलोकित न किए जाने पर व्यवहार अंधेरे में भटकता रहता है।"[7]

जब हम इस मुद्दे पर पहुंच जाते हैं, तो क्या ज्ञानप्राप्ति की क्रिया पूरी हो जाती है? हमारा उत्तर है : हो जाती है और नहीं भी होती। जब सामाजिक मनुष्य किसी वस्तुगत प्रक्रिया को, जो विकास की किसी मंजिल पर हो, बदलने के व्यवहार में लगता है (चाहे किसी प्राकृतिक प्रक्रिया को बदलने का व्यवहार हो अथवा सामाजिक प्रक्रिया को), तब वह अपने चिंतन में वस्तुगत प्रक्रिया के प्रतिबिंब द्वारा और अपनी मनोगत कार्रवाई के संचालन द्वारा अपने ज्ञान को इंद्रियग्राह्य से बुद्धिसंगत मंजिल तक बढ़ा सकता है, तथा ऐसे विचारों, सिद्धांतों, योजनाओं अथवा कार्यक्रमों का निर्माण कर सकता है जो मोटे तौर पर उस वस्तुगत प्रक्रिया के नियमों के अनुरूप हों। इसके बाद वह इन विचारों, सिद्धांतों, योजनाओं अथवा कार्यक्रमों को उसी वस्तुगत प्रक्रिया के अमल में लाता है। यदि वह अपना पूर्वकल्पित उद्देश्य प्राप्त कर ले, अर्थात यदि वह उसी प्रक्रिया के व्यवहार में उन पूर्वनिर्मित विचारों, सिद्धांतों, योजनाओं अथवा कार्यक्रमों को वास्तविकता का रूप दे डाले या मोटे तौर पर वास्तविकता का रूप दे डाले, तो यह माना जा सकता है कि इस ठोस प्रक्रिया के संबंध में ज्ञानप्राप्ति की क्रिया पूरी हो गई। उदाहरण के लिए प्रकृति को बदलने की प्रक्रिया में, किसी इंजीनियरी-योजना को अमली रूप देना, किसी वैज्ञानिक परिकल्पना की सच्चाई को सिद्ध करना; किसी औजार को बनाना अथवा किसी फसल की कटाई करना; और समाज को बदलने की प्रक्रिया में, किसी हड़ताल की जीत होना, किसी युद्ध में विजय प्राप्त होना अथवा किसी शिक्षा संबंधी योजना को पूरा करना—इन सभी को पूर्वकल्पित उद्देश्यों का सिद्ध होना माना जा सकता है। लेकिन साधारणतः, चाहे प्रकृति को बदलने के व्यवहार में हो चाहे समाज को, ऐसा बहुत कम होता है कि लोगों के मूल विचार, सिद्धांत, योजनाएं अथवा कार्यक्रम किसी न किसी परिवर्तन के बिना कार्यान्वित हो जाएं। यह इसलिए कि जो लोग वास्तविकता को बदलने मे लगे हुए हैं, उनकी बहुत सी सीमाएं होती हैं। उनकी

सीमाएं वैज्ञानिक और तकनोलाजीकल परिथितियों से ही निश्चित नहीं होतीं, बल्कि इस बात से भी निश्चित होती हैं कि वस्तुगत प्रक्रिया का खुद किस हद तक विकास हुआ है और उसने किस हद तक अपने को प्रकट किया है (वस्तुगत प्रक्रिया के विभिन्न पहलू और उसका सारतत्व अभी पूर्ण रूप से प्रकट नहीं हुए)। ऐसी स्थिति में, व्यवहार के दौरान अप्रत्याशित परिस्थितियों की जानकारी होने पर विचार, सिद्धांत, योजनाएं अथवा कार्यक्रम अक्सर आंशिक रूप में और कभी-कभी पूरी तरह से भी बदल दिए जाते हैं। दूसरे शब्दों में होता यह है कि मूल विचार सिद्धांत, योजनाएं अथवा कार्यक्रम अंशतः या पूर्णतः वास्तविकता से मेल नहीं खाते, अथवा अंशतः या पूर्णतः गलत होते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि गलत ज्ञान को ठीक करने से पहले गलत ज्ञान को बदलकर उसे वस्तुगत प्रक्रिया के नियमों के अनुकूल बनाने के पहले, और फलतः मनोगत चीजों को वस्तुगत चीजों में बदलने के पहले यानी व्यवहार में प्रत्याशित फल पाने के पहले, बार-बार असफलताओं का सामना करना ही पड़ता है। फिर भी इस मुद्दे पर पहुंचने के बाद, चाहे यह कैसे ही हुआ हो, यह समझा जाता है कि किसी वस्तुगत प्रक्रिया के बारे में, जो विकास की किसी एक मंजिल पर हो, मनुष्य की ज्ञानप्राप्ति की क्रिया पूरी हो गई है।

लेकिन जहां तक प्रक्रिया की प्रगति का ताल्लुक है, मनुष्य की ज्ञानप्राप्ति की क्रिया पूरी नहीं होती। कोई भी प्रक्रिया, चाहे वह प्राकृतिक जगत में हो अथवा सामाजिक जगत में, अपने अंदरूनी अंतरविरोधों और संघर्षों के कारण बढ़ती और विकसित होती है; उसी के अनुसार मनुष्य की ज्ञानप्राप्ति की क्रिया को भी बढ़ना और विकसित होना चाहिए। जहां तक सामाजिक आंदोलन का संबंध है, सच्चे क्रांतिकारी नेताओं को इस बात में माहिर हो जाना चाहिए कि जब भी उनके विचार, सिद्धांत, योजनाएं अथवा कार्यक्रम गलत साबित हों, तो जैसा कि हम बता चुके हैं, वे लोग उन्हें सुधार लें; यही नहीं, उन्हें इस बात में भी माहिर हो जाना चाहिए कि जब कोई वस्तुगत प्रक्रिया विकास की एक मंजिल से दूसरी मंजिल में पहुंच चुकी हो और परिवर्तित हो चुकी हो, तो उसके अनुसार वे खुद के और अपने साथी क्रांतिकारियों के मनोगत ज्ञान को आगे बढ़ाएं और परिवर्तित करें; दूसरे शब्दों में, उन्हें इस बात की गारन्टी कर देनी चाहिये कि उनके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले नए क्रांतिकारी काम और नए अमली कार्यक्रम नई परिस्थिति के परिवर्तनों के अनुकूल हों। क्रांतिकारी काल में परिस्थिति बड़ी तेजी से बदलती है; यदि बदली हुई परिस्थिति के अनुकूल क्रांतिकारियों का ज्ञान भी तेजी से न बदले, तो वे क्रांति को विजय तक नहीं ले जा सकते।

लेकिन अक्सर होता यह है कि विचार वास्तविक स्थिति से पीछे रह जाते हैं; इसका कारण यह है कि मानव-ज्ञान बहुत सी सामाजिक परिस्थितियों की सीमा में बंधा रहता है। क्रांतिकारियों की पांतों में हम उन कट्टरतावादियों का विरोध करते हैं जिनके विचार बदलती हुई वस्तुगत परिस्थितियों के अनुसार आगे नहीं बढ़ पाते तथा इतिहास में दक्षिणपंथी अवसरवाद के रूप में प्रकट होते हैं। वे लोग यह नहीं देख पाते कि अंतरविरोधों का संघर्ष पहले ही वस्तुगत प्रक्रिया को आगे बढ़ा चुका है, जबकि उनका अपना ज्ञान पुरानी मंजिल

पर ही रुक गया है। सभी कट्टरतावादियों के विचारों की यही विशेषता होती है। उनके विचार सामाजिक व्यवहार से अलग होते हैं, और वे समाज के रथचक्रों का पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकते; वे केवल रथ के पीछे यह भुनभुनाते हुए घिसटते रहते हैं कि वह बहुत तेजी से बढ़ा जा रहा है, तथा उसे पीछे ढकेलने और उल्टी दिशा में ले जाने का प्रयत्न करते हैं।

हम लोग "वामपंथियों" की लफ्फाजी का भी विरोध करते हैं। उनके विचार वस्तुगत प्रक्रिया के विकास की एक निश्चित मंजिल से आगे होते हैं; उनमें से कुछ लोग अपनी कल्पना की उड़ान को ही सत्य समझते हैं, और कुछ अन्य लोग तो एक ऐसे आदर्श को आज ही जबरदस्ती अमल में लाना चाहते हैं जिसे सिर्फ कल ही अमल में लाया जा सकता है। वे बहुसंख्यक लोगों के सामयिक व्यवहार से और तात्कालिक वास्तविकता से अपने को अलग कर लेते हैं तथा अपनी कार्रवाई में अपने आपको दुस्साहसवादी जाहिर कर देते हैं।

आदर्शवाद और यांत्रिक भौतिकवाद, अवसरवाद और दुस्साहसवाद, सभी की यह विशेषता होती है कि उनके यहां मनोगत और वस्तुगत के बीच खाई होती है, ज्ञान और व्यवहार में अलगाव होता है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी ज्ञान-सिद्धांत, जिसकी विशेषता वैज्ञानिक सामाजिक व्यवहार है, इन गलत विचारधाराओं का दृढ़ता से विरोध किए बिना नहीं रह सकता। मार्क्सवादी यह मानते हैं कि विश्व के विकास की निरपेक्ष और आम प्रक्रिया में प्रत्येक ठोस प्रक्रिया का विकास सापेक्ष होता है, तथा इसलिए निरपेक्ष सत्य की अनंत धारा में विकास की हर विशेष मंजिल पर ठोस प्रक्रिया का मानव-ज्ञान सापेक्ष रूप में ही सत्य होता है। अनगिनत सापेक्ष सत्यों का समुच्चय ही निरपेक्ष सत्य होता है।[8] वस्तुगत प्रक्रिया का विकास अंतरविरोधों और संघर्षों से भरा होता है, इसी तरह मनुष्य के ज्ञान की क्रिया का विकास भी अंतरविरोधों और संघर्षों से भरा होता है। वस्तुगत संसार की समस्त द्वन्द्वात्मक क्रिया देर-सबेर मानव-ज्ञान में प्रतिबिंबित होती है। सामाजिक व्यवहार में उद्भव, विकास और विलोप की प्रक्रिया अनंत रूप से जारी रहती है, और इसी तरह मानव-ज्ञान में उद्भव, विकास और विलोप की प्रक्रिया अनंत रूप से जारी रहती है। जैसे-जैसे निश्चित विचारों, सिद्धांतों, योजनाओं अथवा कार्यक्रमों के आधार पर वस्तुगत यथार्थ को बदलने के उद्देश्य से मनुष्य का व्यवहार लगातार आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे वस्तुगत यथार्थ के बारे में मनुष्य का ज्ञान भी लगातार गंभीर बनता जाता है। वस्तुगत यथार्थ के संसार में परिवर्तन की क्रिया कभी समाप्त नहीं होती और न मनुष्य द्वारा व्यवहार के जरिए सत्य का ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया ही कभी समाप्त होती है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद ने सत्य का सम्पूर्ण ज्ञान कदापि संचित नहीं कर लिया है, बल्कि वह व्यवहार द्वारा अनवरत रूप से सत्य के ज्ञान का पथ प्रशस्त करता रहता है। हमारा निष्कर्ष यह है कि मनोगत और वस्तुगत, सिद्धांत और व्यवहार, जानने और कर्म करने के बीच ठोस ऐतिहासिक एकता कायम की जाए, और यह कि हम ठोस इतिहास से दूर जाने वाली सभी गलत विचारधाराओं के विरुद्ध हैं, चाहे वे "वामपंथी" हों या दक्षिणपंथी।

समाज के विकास की मौजूदा मंजिल में, इतिहास ने सर्वहारा वर्ग और उसकी पार्टी

को यह जिम्मेदारी सौंप दी है कि वह दुनिया को ठीक तरह समझे और उसे बदल डाले। यह प्रक्रिया, दुनिया को बदलने का यह व्यवहार-क्रम, जिसका निर्णय वैज्ञानिक ज्ञान के अनुरूप हुआ है, दुनिया में और चीन में एक ऐतिहासिक घड़ी में पहुंच गया है, एक ऐसी महत्वपूर्ण घड़ी में जैसी मानव-इतिहास में पहले कभी नहीं देखी गई। दूसरे शब्दों में यह एक ऐसी घड़ी है जिसमें दुनिया और चीन से अंधकार को पूरी तरह भगाने और एक अभूतपूर्व आलोकमय दुनिया का निर्माण करने का प्रयत्न किया जा रहा है। दुनिया को बदलने के लिए सर्वहारा वर्ग और क्रांतिकारी जनता के संघर्ष में निम्नलिखित कार्य शामिल हैं : वस्तुगत दुनिया में परिवर्तन लाना तथा साथ ही अपनी मनोगत दुनिया में भी परिवर्तन लाना—अपनी ज्ञानार्जन शक्ति में तथा मनोगत और वस्तुगत दुनिया के पारस्परिक संबंधों में परिवर्तन लाना। इस तरह का परिवर्तन पृथ्वी के एक भाग, सोवियत संघ, में लाया जा चुका है। वहां के लोग परिवर्तन की इस प्रक्रिया में तेजी ला रहे हैं। चीन और बाकी संसार की जनता या तो परिवर्तन की इस प्रक्रिया से गुजर रही है या गुजरने वाली है। और जिस वस्तुगत दुनिया में परिवर्तन लाना है, उसमें परिवर्तन के विरोधी भी मौजूद हैं, जिन्हें स्वेच्छा से और जागरूक होकर अपने अंदर परिवर्तन लाने की मंजिल में दाखिल होने से पहले मजबूर होकर अपने अंदर परिवर्तन लाने की मंजिल से गुजरना पड़ेगा। जब समग्र मानव-जाति स्वेच्छा से और जागरुक होकर अपने अंदर परिवर्तन लाएगी और दुनिया में परिवर्तन लाएगी, तभी विश्व-कम्युनिज्म के युग का उदय होगा।

व्यवहार से ही सत्य की खोज करना और व्यवयहार से ही सत्य को परखना और विकसित करना। इंद्रियग्राह्य ज्ञान से आरंभ करना और उसे गत्यात्मक रूप से बुद्धिसंगत ज्ञान में विकसित करना; उसके बाद बुद्धिसंगत ज्ञान से आरंभ करके गत्यात्मक रूप से क्रांतिकारी व्यवहार का पथ प्रदर्शन करना, जिससे कि मनोगत और वस्तुगत दुनिया में परिवर्तन लाया जा सके। व्यवहार, ज्ञान फिर व्यवहार, फिर ज्ञान। इस क्रम की अनंत काल तक आवृत्ति होती रहती है और हर आवृत्ति के साथ व्यवहार और ज्ञान की अंतर्वस्तु और अधिक ऊंचे स्तर पर पहुंचती जाती है। यह है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का समूचा ज्ञान-सिद्धांत, यह है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का जानने और कर्म करने की एकता का सिद्धांत।

नोट

1. वी.आई.लेनिन, "हेगेल की रचना 'तर्क-विज्ञान' की रूपरेखा"।

2. देखिए : कार्ल मार्क्स, "फायरबाख संबंधी स्थापनाएं"; वी.आई.लेनिन, "भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना", अध्याय 2, परिच्छेद 6।

3. वी.आई.लेनिन, "हेगेल की रचना 'तर्क-विज्ञान' की रूपरेखा"।

4. "समझ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि अनुभव के आधार पर समझ प्राप्त करना व अध्ययन करना आरंभ किया जाए, अनुभवसिद्धि से ऊपर उठकर सार्वभौमिकता के स्तर पर पहुंचा जाए।" (वी.आई.लेनिन, "हेगेल की रचना 'तर्क-विज्ञान' की रूपरेखा")

5. ताङपिंग स्वर्गिक राज्य का आंदोलन 19वीं सदी के मध्य में सामंती शासन और चिङ वंश के

राष्ट्रीय उत्पीड़न के विरुद्ध क्रान्तिकारी किसान आंदोलन था।

6. यि हो तुआन आंदोलन 1900 में उत्तरी चीन में हुआ साम्राज्यवाद-विरोधी सशस्त्र आंदोलन था।

7. 4 मई आंदोलन साम्राज्यवाद-विरोधी और सामंतवाद-विरोधी क्रान्तिकारी आंदोलन था जो 4 मई 1919 को शुरू हुआ था।

8. क्रान्तिकारी किसान युद्ध 1927 से 1937 तक कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में चला चीनी जनता का क्रान्तिकारी संघर्ष था। इसकी मुख्य अंतर्वस्तु लाल राजनीतिक सत्ता की स्थापना और विकास, कृषि क्रान्ति का विस्तार और क्वोमिंताङ प्रतिक्रिया का सशस्त्र प्रतिरोध था। इसे दूसरा क्रान्तिकारी गृहयुद्ध भी कहते हैं।

9. वी.आई.लेनिन, "क्या करें?", अध्याय 1, परिच्छेद 4।

10. वी.आई.लेनिन, "भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना", अध्याय 2, परिच्छेद 6।

11. जे.वी.स्तालिन, "लेनिनवाद के आधारभूत सिद्धांत", भाग 3।

12. देखिए : वी.आई.लेनिन, "भौतिकवाद और अनुभवसिद्ध आलोचना", अध्याय 2, परिच्छेद 5।